'अप्प दीपो भव'

वॉयस ऑफ बुद्धा

Postal Reg. No.-DL(ND)-11/6144/2016-18
WPP Licence No.- U(C)-101/2017-18
R.N.I. No. 68180/98

Date of Publication : 15.04.2018
Date of Posting on concessional rate :
2-3 & 16-17 of each fortnight

मूल्य : पाँच रूपये

प्रेषक : डॉ0 उदित राज (राम राज) चेयरमैन – जस्टिस पब्लिकेशंस, टी–22, अतुल ग्रोव रोड, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली–110001, फोन : 23354841–42

Website : www.uditraj.com E-mail: parisangh1997@gmail.com

● वर्ष : 21 ● अंक 10 ● पाक्षिक ● द्विभाषी ● कुल पृष्ठ संख्या 8 ● 1 से 15 अप्रैल, 2018

7 अप्रैल, 2018 को राष्ट्रीय सहारा में प्रकाशित लेख

दलितों ने अपनी कब्र खुद खोदी

यद्य हमारी परंपरा का हिस्सा हो गया है कि हम महापुरुषों के विचार पढ़ते और बोलते रहते हैं लेकिन जब उन्हें अंगीकार करने की बात आती है तो शायद रुपये में दो–चार पैसे भी नहीं कर पाते हैं । 14 अप्रैल का ऐसा दिन होता है कि जहाँ भी नजर दौडायें डॉ. अम्बेडकर की जयंती, गोष्ठी और व्याख्यान इत्यादि आयोजित हो रहे होते हैं। मूलतः दलित ही यह कार्यक्रम करते हैं। वक्ता एवं भाग लेने वालों से उस समय बात करें तो ऐसा लगेगा आज ही सामाजिक क्रांति हो जाएगी। बौद्ध धर्म एवं जातिविहीन समाज की स्थापना का दर्शन सब के जुबान पर होता है। आयोजन समाप्त होने के बाद फिर से अपनी जाति और रोजमर्रा की आदत में वापस लौट जाते है। गांधी जी हो या अन्य महापुरुष उनके मामले में भी यही कथनी है। गाँधी जी ने तो यहाँ तक कहा था कि आजादी के बाद राज्य के अस्तित्व की भी आवश्यकता नहीं होगी और हर गाँव अपने आप में आत्मनिर्भर हो जायेगा। कांग्रेस के भी अस्तित्व की सार्थकता को भी उन्होंने नकारा और संपत्ति ट्रस्ट के मातहत होगी।

गांधी जी हो या नेहरु या सुभाष चन्द्र बोष या भगत सिंह, इनके विचारों को अंगीकार करना अभिजात्य वर्ग की आवश्यकता नहीं है। पहले से ही ये समाज अच्छी स्थिति में रहा है तो उसके ऊपर शायद इनके विचारों का मुलम्मा न चढ़े। महापुरुषों के विचार को भारतीय समाज मानता तो क्या यह देश अमेरिका, चीन, रूस जैसा नहीं होता। मध्यकालीन में कबीर दास जी के जो क्रन्तिकारी बोल थे कितनो ने उसे माना लेकिन सराहा लगभग सभी ने। हमें देखना है क्या इस कथनी और करनी में अंतर करके दलित पिछड़ा और महिला क्या अपनी स्थिति में सुधार ला सकते हैं। परिवर्तन करने की आवश्यकता उन्हीं को ज्यादा है जिनकी स्थिति खराब हो। दलितों में सवर्णो से ज्यादा जातिवाद है, जैसे ब्राह्मण और राजपूत, वैश्य, भले बेटी का रिश्ता न करें लेकिन रोटी और रोजगार में कोई भी भेदभाव नहीं है । क्या एक खटिक, चमार के साथ और चमार बाल्मीकि के साथ रोटी और रोजगार करते हैं? गाँव में तो छुआ–छूत भी इनमे है।

पिछले तीन दशक से जाग्रति और शिक्षा दोनों बढ़ी है लेकिन एकता टूटी है। कमोवेश सभी जातियों के अपने–अपने नेता और संगठन हो गये है और उनका खुराक ही यह होता है कि दूसरे जाति को जिम्मेदार ठहराये कि आरक्षण और अन्य सरकारी सुविधाओं का लाभ दूसरे ले रहे हैं। आंध्र प्रदेश में माला और मादिगा जो दोनों दलित जातियां हैं उनमे भयंकर अंतर्विरोध है कि मादिगा वंचित रह गये हैं और फायदा माला को मिला है। हरियाणा में मूलतः बाल्मीकि और चमार में अंतर्विरोध तो उत्तर–प्रदेश में चमार बनाम अन्य दलित जातियों का है। विडम्बना ही है कि सभी दलित और पिछड़ी जातियां न्याय–अधिकार की बात करती हैं लेकिन सोंच पुरानी ही रहती है। जब तक सोंच पुरानी होगी तब तक हालात भी पुराने जैसे होंगे। अब स्थिति ऐसी आगई है कि जाति की एकता ही उनकी बर्बादी का कारण बन गयी है। लगभग 20 वर्ष का खुद का अनुभव है। अनुसूचित जाति/जनजाति परिसंघ को बनाकर देश व्यापी संघर्ष किया और न केवल आरक्षण बचाया बल्कि बौद्ध धर्म के कारवां को बढाया और पूरे देश के कर्मचारियों की रोजमर्रा की समस्या को भी हल करने की कोशिश की । मैं आईआरएस अधिकारी था और नौकरी की परवाह न करते हुए 1997 में परिसंघ के बैनर के तले धरना और प्रदर्शन करके तीन संवैधानिक संशोधन कराने में योगदान दिया जिससे आरक्षण बचा। 4 नवम्बर 2001 को लाखों लोगों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दिलाई, निजी क्षेत्र में आरक्षण की लड़ाई को राष्ट्रीय मुद्दा बनाया। 2003 में अतिरिक्त आयकर आयुक्त के पद से इस्तीफा दिया और इंडियन जस्टिस पार्टी बनाया। जब वोट देने की बात आई तो भाजपा, कांग्रेस, सपा, बसपा को दिया और सरकार बन जाने के बाद जब जुल्म अत्याचार हुए तो आलोचना मेरी की कि उदित राज क्या कर रहा है? 2003 से ही कभी आरोप लगा कि कांग्रेस का चमचा हूँ तो कहीं भाजपा का। अन्य भी दुष्प्रचार हुए जब मैंने समाज से प्रमाण माँगा तो न उस समय दिया और न आज कोई दे सकता है कि मेरी क्या गलती है । जो जातीय संख्या में ज्यादा रही उनके लोग अनायास झूठा दुष्प्रचार करके कमजोर करते रहे। ये भूल गए कि तुम्हारी जाति ही तुम्हारी कब्र बनेगी। हाल में यूजीसी के आदेश से शिक्षक पद का आरक्षण गया और सुप्रीम कोर्ट ने अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 लगभग समाप्त सा कर दिया। एक तरफ आरक्षण निजीकरण, ठेकेदारी, आउटसोर्सिंग से खत्म होता रहा तो दूसरी तरफ ये जातियां आपस में एक दूसरे के खिलाफ जहर उगलती रही। मुझे सबसे ज्यादा कमजोर दलितों ने दुष्प्रचार करके किया क्यों कि मैं उनकी जाति का नहीं था। जिस जाति में पैदा हुआ मेरी गलती तो नहीं थी और उसे छोड़कर बौद्ध धर्म अपनाया लेकिन ये दलित ही थे जो बार– बार जाति को याद दिलाते रहे।

डॉ. अम्बेडकर के विचारों को अंगीकार न करने से दलितों ने अपनी कब्र खोद ली है। शिक्षा और सरकारी नौकरी में आरक्षण जाता रहा जो यही सम्मान और भागेदारी का मुख्य साधन रहा। इस बार भारत सरकार 14 अप्रैल को जस्टिस डे के रूप में मना रही है। इन्हें कौन जस्टिस देने वाला है जब ये खुद जातिवाद के जहर से नहीं निकल रहे हैं विचार पढने और बोलने से जीवन नहीं बदलते हैं व्यवहार में उतारने से होते है।

***

दैनिक जनसत्ता में प्रकाशित डॉ. उदित राज जी की मुलाखत

जनतंत्र में हिंसा की कोई जगह नहीं

दलित चिंतक डॉ. उदित राज का कहना है कि सामाजिक न्याय लाने की दिशा में भारत का बौद्धिक वर्ग नाकाम रहा है। अनुसूचित जाति/ जनजाति अत्याचार निरोधक अधिनियम पर सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देश के बाद हुए भारत बंद को लेकर उन्होंने कहा कि यह आंदोलन राजनीतिक नेतृत्व के बिना स्वतः शुरू हुआ। भाजपा सांसद के मुताबिक, गृहयुद्ध जैसे हालात बनने के पहले हम मान लें कि कमजोर तबकों में आक्रोश है और इसका समाधान निकाला जाए। बारादरी का संचालन किया कार्यकारी संपादक मुकेश भारद्वाज ने।

मनोज मिश्र : सर्वोच्च न्यायालय ने अनुसूचित जाति/जनजाति संबंधी कानून में जो बदलाव किया, क्या वह ऐसा है कि उसके लिए इतना बड़ा अंदोलन खड़ा हो गया?

डॉ. उदित राज : सुप्रीम कोर्ट ने बड़ा बदलाव किया है। अब तब तक गिरफ्तारी नहीं हो सकती, जब तक कि आरोपी के बारे में उसका नियोक्ता या ऊपर का अधिकारी लिख कर नहीं दे देता। इसके लिए उसे कारण भी बताना होगा कि उसे क्यों गिरफ्तार किया जाना चाहिए। सामान्य लोगों के मामले में एसएसपी को लिख कर देना पड़ेगा। दोनों स्थितियों में पक्षपात और पूर्वग्रग्रस्त होने या रिश्वत लेकर मामले को बदल देने की आशंका बनी रहेगी। इसके अलावा राजनीतिक दबाव में भी पक्षपात किया जा सकता है। माना कि इस कानून का कुछ दुरुपयोग हुआ है, पर इसे इतना डाइल्यूट करने की जरूरत नहीं थी। इसे लेकर नाराजगी इसलिए भी है कि इसी नजरिए से दूसरे कानूनों को क्यों नहीं देखा। आज स्थिति यह है कि चाहे कोई बड़ा अधिकारी हो या मंत्री हो, वह किसी महिला से अकेले में नहीं मिलना चाहता। किसी महिला को कमरे में बिठा देता है। इस तरह नुकसान महिलाओं का ज्यादा हुआ है। महिलाओं की नियुक्तियां कम हो गई हैं। इसी तरह दहेज निरोधक कानून का भी खूब दुरुपयोग होता था। इस कदर कि कनाडा में बैठे व्यक्ति को भी गिरफ्तार कर लिया जाता था। अब जाकर उस कानून में कुछ बदलाव किया गया है। इस तरह समाज में कई तरह की विकृतियां आई हैं। इन स्थितियों को भी दुरुस्त करने की जरूरत है।

मृणाल वल्लरी : महिलाओं पर अत्याचार खूब बढ़े और दुरुपयोग के चुनिंदा मामले। और, आप महिलाओं के लिए बने कानूनों के दुरुपयोग का हवाला दे रहे हैं कि इस वजह से उन्हें नौकरी नहीं मिल रही?

'नहीं, मैं हर तरह के कानून के दुरुपयोग के खिलाफ हूं। कई ऐसे कानून हैं, जिनका दुरुपयोग होता है। महिलाओं से जुड़े कानूनों में पुलिस चाहते हुए भी उनके दुरुपयोग को रोक नहीं सकती। वह जानता है कि गलत है, पर उसकी बाध्यता है कि उसे एफआइआर लिखनी पड़ेगी।

अजय पांडेय : सर्वोच्च न्यायालय का फैसला तो अब आया है, पर इसके पहले कई ऐसी घटनाएं हुई, जिससे दलित समुदाय के बीच आक्रोश था। क्या आपको नहीं लगता कि सुप्रीम कोर्ट का फैसला तात्कालिक कारण बना उस सारे आक्रोश के फूटने का?

'सही बात है। इसके पीछे कई कारण हैं। एक कमजोर वर्ग से ऐसी उम्मीद नहीं थी कि भारत बंद कर देगा। सशक्त जातियां जैसे जाट, गुर्जर, पटेल तो बंद कर देते थे, पर दलित इस तरह एकजुट होंगे, किसी को अंदाजा नहीं था। इसमें राजनीतिक लोगों का बिल्कुल योगदान नहीं रहा। उस दिन जरूर कुछ लोगों ने भुनाने का प्रयास किया। यह आक्रोश बेरोजगार युवाओं का था। पिछले कुछ सालों से देखा जा रहा है कि रोजगार के नए अवसर नहीं उपलब्ध हो पा रहे हैं। ठेका पद्धति लागू हो गई है। इसे लेकर लंबे समय से युवाओं में आक्रोश जमा था। यह एक दिन में नहीं हुआ। वह भी इस आंदोलन में फूटा।

पारुल शर्मा : इस तरह के विरोध से बचने का उपाय क्या है?

'इसमें विरोध कई तरह का है। मिलाजुला। सुप्रीम कोर्ट की वजह से तो है ही। इसमें सिर्फ सुप्रीम कोर्ट नहीं, बल्कि पूरी न्यायपालिका को लेकर विरोध भरा हुआ है। एक उदाहरण से इसे समझें- अगर कोई न्यायाधीश महोदय किसी वकील का नाम जज के लिए प्रस्तावित करते हैं, तो उस वकील की परीक्षा नहीं होती। उसका इंटरव्यू नहीं होता। उनके द्वारा लड़े गए मुकदमों का विश्लेषण भी नहीं होता। मुख्य न्यायाधीश किसी को भी न्यायाधीश बना देते हैं। आप देखें कि बीस घरानों के इर्द-गिर्द सारे जजों की नियुक्ति सिमटी हुई है। जहां कोई मेरिट नहीं, वे देश का मेरिट तय कर रहे हैं! उसमें अनुसूचित जाति/ जनजाति/ अन्य पिछड़ा वर्ग को कभी चुना ही नहीं। तो, इस तरह बहुत दिनों से चला आ रहा था कि न्यायपालिका हमारी दुश्मन है। इसी तरह पदोन्नति के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को लेकर भी आक्रोश था। फिर हजारों सालों से जातीय भेदभाव के कारण दलितों को जो अपमान सहन करना पड़ रहा है, उसका दंश तो है ही। यह सब मिल कर फूटा। यह एक तरह से आंतरिक संघर्ष ही है। और यह सब एकदम से नहीं बदलेगा। जब तक इन वर्गों की भागीदारी नहीं बढ़ेगी, तब तक सिर्फ नारों या अखबारों में लेख लिख देने से नहीं बदलाव होगा।

सूर्यनाथ सिंह : यह आंदोलन बिना किसी राजनीतिक नेतृत्व के, स्वतः शुरू हुआ था। क्या यह इस बात का संकेत है कि इन वर्गों के लोगों का राजनीतिक नेतृत्व पर भरोसा कमजोर हुआ है?

'यह आंदोलन राजनीतिक नेतृत्व के बिना हुआ। इसे राजनीतिकों से मोहभंग भी कह सकते हैं। दरअसल, अंदर-अंदर यह बात लंबे समय से सुलग रही थी और उबर आई। इसमें किसी राजनीतिक दल का योगदान नहीं है। बेहतर है कि हम सच्चाई को स्वीकार करें। हम मान लें कि लोगों में आक्रोश है और इसका समाधान निकाला जाए। वही देश के हित में है।

अनुराग अन्वेषी : इस बार का आंदोलन जिस तरह हिंसक हुआ, उसे किस रूप में देखते हैं?

'दलित वर्ग का सत्ता से बहुत लेना-देना है नहीं। इसकी जड़ समाज में है। सरकार चाहे जिस पार्टी की आए, वह दबाने का काम करेगी। हां, थोड़ा-बहुत फर्क पड़ सकता है। यह जो आंकड़े गिनाए जाते हैं कि अमुक सरकार में इतने दलित प्रतिनिधि हैं, अमुक में इतने थे, वह सब फिजूल है। जब तक समाज के भीतर बदलाव नहीं होता, तब तक ये चीजें समाप्त नहीं होंगी। हमारे देश में अब तक सामाजिक बदलाव हुआ नहीं। इसमें दो बड़े मुद्दे मैं मानता हूं। एक, जाति का प्रश्न और दूसरा महिला का। इन दोनों वर्गों को संबोधित किया ही नहीं गया। सरकारी पद देकर महिलाओं का उत्थान नहीं किया जा सकता, जब तक कि उन्हें आजादी न दी जाए। इसी तरह जब तक सामाजिक बदलाव का प्रयास नहीं होगा, तब तक दलित वर्गों का उत्थान नहीं हो सकता। इसमें बौद्धिक वर्ग की भूमिका भी सवालों के घेरे में है।

आर्येंद्र उपाध्याय : सुप्रीम कोर्ट में बालाकृष्णन भी जज हुए, फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि इस वर्ग के लोगों को वहां जगह नहीं मिल पाती!

'सत्तर सालों में इक्का-दुक्का उदाहरणों से बात नहीं बनती। के.आर. नारायणन साहब न होते, तो शायद बालाकृष्णन भी वहां नहीं पहुंच पाए होते। राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति अधिनियम में बदलाव का प्रस्ताव लाया गया था, मगर न्यायपालिका ने उसमें अडंगा लगा दिया। अगर वह बदलाव होता तो कुछ बेहतरी आ सकती थी। दुनिया में कहीं ऐसी न्यायपालिका नहीं है, जहां जज की नियुक्ति जज करता है। इंग्लैंड में जूडिशियल कमीशन है, अमेरिका में सीनेट नियुक्त करती है और रूस में आधे जज निर्वाचित होकर आते हैं, आधे वहां का राष्ट्रपति चुनता है। मगर यहां पर तो जरा-सी बात होती है तो उसे हस्तक्षेप मान लिया जाता है। वे खुद कहने लगते हैं कि यह न्यायपालिका के कामकाज में हस्तक्षेप है। संविधान में न्यायपालिका को इतना ही अधिकार दिया गया है कि वह विधायिका के बनाए कानूनों की व्याख्या करेगी, उसका पालन करेगी, कानून बनाने का काम नहीं करेगी। मगर आज संसद से ज्यादा सुप्रीम कोर्ट कानून बना रहा है। यहां पर मान लिया गया है कि जज भगवान हैं, वे गलती नहीं कर सकते। क्यों आज इतने मुकदमे लटके पड़े हैं। क्यों आज मध्यवर्ग का आदमी सुप्रीम कोर्ट में जा नहीं सकता। वकील की फीस दस लाख, ग्यारह लाख रुपए है। गरीब आदमी वहां तक जाने की सोच भी नहीं सकता। वकीलों की फेस वैल्यू के हिसाब से फीस बढ़ती रहती है। यह फेस वैल्यू किसने बनाना शुरू किया? जजों ने। 1993 के बाद से जब कालिजियम प्रणाली से जजों की नियुक्तियां होने लगीं, तो इसकी सारी जिम्मेदारी जजों पर जाती है। खबरों की सुर्खियों में आने में उनकी दिलचस्पी अधिक है, मुकदमे निपटाने में कम है।

मुकेश भारद्वाज : क्या आपको लगता है कि वकीलों की फीस निर्धारण की दिशा में सरकार को काम करना चाहिए, ताकि उन तक आम आदमी की पहुंच संभव हो सके?

'सरकार नहीं, जज खुद यह काम कर सकते हैं। जजों का व्यवहार बदलना पड़ेगा। चाहे वह जूनियर वकील हों या सीनियर, उसकी बहसों को उसे बराबरी की नजर से तवज्जो देना चाहिए। एक सीनियर वकील तो जज को भी डांट लेता है, पर एक जूनियर वकील भले बहुत काबिल हो, पर उसकी बात ठीक से सुनी तक नहीं जाती। जब तक जज फेस वैल्यू का ध्यान रखेंगे, तब तक उनकी फीस बढ़ती रहेगी। जज हमारे यहां पक्षपाती हैं। जिस दिन जज चेहरे के बजाय मेरिट पर बहसों को सुनने लगेंगे, उस दिन वकीलों की फीस अपने आप नीचे आ जाएगी। फिर इसमें बदलाव होना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को न बनने देकर गलत किया। वह बनता तो भी इस स्थिति में कुछ बदलाव आ सकता था। संविधान की धारा 312 में न्यायिक नियुक्तियों का प्रावधान है, जैसे आएएस, आइपीएस की नियुक्तियां होती हैं। उसे ये जज लागू नहीं होने दे रहे हैं।

अजय पांडेय : क्या वजह है कि दिल्ली में आपकी पार्टी को दलितों का वोट बहुत कम मिलता है?

'जो लोग कहते हैं कि जिस पार्टी में दलित प्रतिनिधियों की संख्या अधिक होती है, वह दलितों के करीब होती है, वह बिल्कुल गलत बात है। दलित निर्णायक मतदाता नहीं होता। वह तो दस-पंद्रह फीसद होगा। वह जीतता है दूसरी जातियों के सहयोग से। इसलिए जिस दल के साथ दलित अधिक होंगे उसके सांसद-विधायक कम आएंगे। वहां चूंकि सवर्ण का वोट जाता है, ओबीसी का वोट जाता है, इसलिए दलित प्रतिनिधि जीत जाते हैं। क्योंकि अस्सी-नब्बे फीसद दूसरी जाति के लोग हैं, इसलिए जो दलितों के जनाधार वाली पार्टी होगी, वे उसे वोट ही नहीं देंगे। जहां दलित होंगे, वहां दूसरे नहीं होंगे।

पारुल शर्मा : जब कोई व्यक्ति किसी खास समुदाय के हितों को ध्यान में रख कर कोई आंदोलन करता है तो उसे उस समुदाय का समर्थन मिलता है, पर जब वही व्यक्ति सरकार के साथ हाथ मिला लेता है तो क्या उससे उस समुदाय का मोहभंग नहीं होता?

'राजनीति में समझौते करने पड़ते हैं। राजनीति स्वार्थ की होती है, मैं इस बात को स्वीकार करता हूं। और मैं वहां गया हूं तो इसलिए कि हाशिए के समाज की समस्याओं को उठा सकूं। फिर मैं यह भी कहता हूं कि मैं किसी से बंधा नहीं हूं। अगर दलितों और महिलाओं का अधिकार छीना जाता है, तो मेरे लिए पार्टी बड़ी नहीं है। उस समुदाय के लोगों का अधिकार बड़ा है। दूसरी बात कि हर सांसद और विधायक एक तरह से नौकरी करता है। इसके अलावा जब कोई व्यक्ति आंदोलन शुरू करता है, अधिकारों की लड़ाई शुरू करता है तो वह लड़ते-लड़ते थक जाता है। समाज भी उसका साथ नहीं देता। समाज भी सत्ता के साथ जाता है।

अरविंद शेष : आपकी पहचान दलित आंदोलन से बनी है, पर अब आपको संघ की विचारधारा के साथ काम करना पड़ रहा है। कैसे तालमेल बिठा पाते हैं?

'देखिए, सामाजिक और धार्मिक विचारधारा का राजनीतिक विचारधारा से साम्य होना जरूरी नहीं है। राजनीति में राजनीतिक कार्यक्रमों से तालमेल बिठाना होता है। भाजपा में ईसाई भी हैं, मुसलमान भी हैं, दलित भी हैं। पर जरूरी नहीं कि वे भाजपा के धार्मिक दर्शन से सहमत हों। हम राजनीतिक कार्यक्रम से जुड़े हुए हैं। हर पार्टी का राजनीतिक कार्यक्रम होता है। मैं उनकी सामाजिक विचारधारा से नहीं जुड़ा हूं। इसलिए तालमेल बिठाने की समस्या है ही नहीं।

राजेंद्र राजन : मगर आप जिस सामाजिक बदलाव की बात कर रहे हैं, वह कैसे संभव होगा, जब आप जैसे लोग खुद इस तरह राजनीतिक समझौता करेंगे?

'देखिए, हम संसद में इसलिए गए हैं कि अपने वर्ग के लोगों की समस्याओं के बारे में आवाज उठा सकें। चाहे वह पार्टी कोई भी हो, हम उससे जुड़ कर अपना काम कर रहे हैं। यह अलग बात है कि इसके लिए कुछ समझौता भी करना पड़ता है। सबको समझौता करना पड़ता है। हमने बारह सालों तक संघर्ष किया, पर जहां तक पहुंचना चाहिए था, वहां तक नहीं पहुंच पाए, क्योंकि न हम उतना पैसा इकट्ठा कर सकते थे और न मैंने कभी जाति का इस्तेमाल किया। इसलिए इस तरह संसद में पहुंच कर अपनी बात कह रहे हैं।

मुकेश भारद्वाज : दलित आंदोलन के दौरान हुई हिंसा को आप कितना उचित मानते हैं?

'किसी भी तरह की हिंसा को मैं उचित नहीं मानता। जनतंत्र में किसी के लिए भी हिंसा का स्थान नहीं है। इसमें हुई हिंसा के लिए केवल दलित जिम्मेदार नहीं हैं। उससे जुड़े तथ्य अब सामने आ चुके हैं। दूसरे लोगों ने बदनाम करने के लिए भी किया। इसलिए सारे मामले की जांच होनी चाहिए।

उदित राज : उत्तर प्रदेश के रामनगर में जन्मे उदित राज दलित आंदोलन का मजबूत चेहरा हैं। इंडियन जस्टिस पार्टी के संस्थापक राज ने फरवरी 2014 में भारतीय जनता पार्टी में अपनी पार्टी का विलय कर लिया था। वर्तमान में उत्तर पश्चिमी दिल्ली से भाजपा के सांसद उदित राज दलित आंदोलनों से लेकर उच्च शिक्षा के निजीकरण के खिलाफ चल रहे अभियानों में भी मुखर आवाज रहे हैं। हाल ही में विश्वविद्यालयों में रोस्टर में बदलाव कर कॉलेजों के बजाय विभाग को इकाई मान कर नियुक्तियां करने के खिलाफ इन्होंने आवाज उठाई। वे मानते हैं कि भाजपा में दलित भागीदारी संभव है। इनका मानना है कि आंबेडकर को किसी दल या जाति विशेष से जोड़ने पर दलित चेतना का विकास अवरुद्ध होगा। राजनीतिक समझौतों के सवाल पर असहज हुए बिना बेहिचक कहते हैं कि राजनीति में समझौता करना पड़ता है। हम संसद में इसलिए गए हैं कि अपने वर्ग के लोगों की समस्याओं के बारे में आवाज उठा सकें। चाहे वह पार्टी कोई भी हो, हम उससे जुड़ कर अपना काम कर रहे हैं। यह अलग बात है कि इसके लिए कुछ समझौते भी करने पड़ते हैं। सबको समझौता करना पड़ता है। हमने बारह सालों तक संघर्ष किया, पर जहां पहुंचना चाहिए था, वहां तक नहीं पहुंच पाए, क्योंकि न हम उतना पैसा इकट्ठा कर सकते थे और न मैंने कभी जाति का इस्तेमाल किया। इसलिए इस तरह संसद में पहुंच कर अपनी बात कह रहे हैं।

ब्लैक डेथ : यूरोप की आधी आबादी खत्म कर देने वाली महामारी!

साल 1347 महीना अक्टूबर यूरोप का मौसम खुशगवार था। काले समुद्र से लंबी दूरी तय कर एक दर्जन व्यापारिक जहाज सिसिली बंदरगाह पहुंचे थे। बंदरगाह पर गहमागहमी थी। काफी संख्या में लोग जहाज का स्वागत करने के लिए समुद्र के किनारे इकट्ठा हुए थे। जहाज किनारे तो लगे, लेकिन कोई व्यक्ति बाहर नहीं निकला। लोगों को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। कुछ देर बाद वे खुद जहाज पर चढ़े, तो उनके होश उड़ गए। जहाजों में मिलीं लाशें और लाशों के बीच कुछ जिंदा लोग, जो किसी तरह जिंदगी की डोर थामे हुए थे। दरअसल, वे मौतें प्लेग के कारण हुई थीं। जहाज पर सवार होकर आयी यह महामारी धीरे-धीरे यूरोप के कई हिस्सों में फैल गयी थी और वहां की आधी आबादी को खत्म कर दिया और ब्लैक डेथ के नाम से इतिहास के पन्नों में दर्ज हो गई। तो आईए जानते हैं कि इस 'ब्लैक डेथ' के पूरे कहर को।

महामारी से पहले बरपा था अकाल का कहर

13वीं-14वीं शताब्दी का इतिहास देखें, तो यूरोप की हालत भी दूसरे देशों से बहुत अच्छी नहीं थी। प्राकृतिक आपदा व बीमारियों का जैसा असर दूसरे देशों में था, यूरोप में भी वैसा ही था। ब्लैक डेथ के फैलने से पहले सन् 1315 के आसपास उत्तरी यूरोप खाद्यान्न संकट की चपेट में आ गया था। असल में सन् 1310 के बाद यूरोप का मौसम लगातार बेरुख हो चला था। इससे खेती बुरी तरह प्रभावित होने लगी थी। दूसरी तरफ, यूरोप की आबादी भी बढ़ रही थी और फिर वही हुआ जिसकी आशंका थी। सन् 1315 में अमूमन जिस मौसम में एकदम बारिश नहीं होनी चाहिए, उस मौसम में भी लगातार बारिश होने लगी और सर्दी का मौसम भी लंबा खिंच गया। इससे खेती पूरी तरह चौपट हो गयी और लोगों के सामने भुखमरी की नौबत आ गयी। कहते हैं कि उस दौर में अनाज की किल्लत इतनी बढ़ गयी थी कि जिनके पास अनाज था, वे 300 प्रतिशत दाम चढ़ाकर बेचने लगे थे। जिनके पास कोई साधन नहीं था, वे भूखों मरने को मजबूर थे। भूख की वजह से उत्तरी यूरोप के लाखों लोगों की तड़प-तड़पकर मौत हो गयी थी।

इतनी बड़ी त्रासदी से उबरना आसान नहीं था। फिर भी किसी तरह यूरोप इससे उबर रहा था, लेकिन किसी को पता नहीं था कि इससे भी बड़ी त्रासदी दस्तक देने जा रही थी। चीन में शुरू हुई महामारी, रेशम मार्ग से पहुंची यूरोप ब्लैक डेथ को दुनिया के इतिहास में सबसे खतरनाक महामारी के नाम से जाना जाता है। इसके कारणों व परिणामों पर तमाम तरह के शोध हुए हैं। कमोबेश सभी शोध इस बात की तस्दीक करते हैं कि यह महामारी चीन से शुरू हुई थी। चीन में यह रोग कैसे शुरू हुआ, यह अब तक रहस्य है। लेकिन, उस दौर में चीन में कई बार प्लेग फैला था।

सन् 1340 के बाद फिर एक बार चीन में प्लेग का कहर बरपा, लेकिन इस बार यह चीन की सरहद तक सिमटकर नहीं रहा। व्यापार में सहूलियत के लिहाज से मध्य एशिया, एशिया व दक्षिण यूरोप के बीच संपर्क स्थापित करने के लिए सदियों पूर्व थल व जल मार्ग विकसित किया था, जिसे सिल्क रोड कहा जाता था। सिल्क रोड इसलिए क्योंकि उसी मार्ग से सिल्क की तिजारत हुआ करती थी। बहरहाल, 14वीं शताब्दी के चौथे दशक में चीन में प्लेग का विस्फोट हुआ, तो वह इसी रास्ते यूरोप पहुंच गया। हुआ ये कि प्लेग फैलानेवाले कीटाणु काले चूहों के साथ सन् 1346 में चीन से युक्रेन के क्रीमिया में पहुंच गए। क्रीमिया से जब तिजारती सामान से भरे जहाजों को इटली के सिसिली पोर्ट के लिए रवाना किया गया, तो प्लैग के ये कीटाणु चूहों के साथ जहाज पर सवार हो गए। आगे बीमारी के संक्रमण से जहाज में बैठे लोगों की तबियत नासाज होने लगी और कई लोगों के प्राण पखेरु जहाज में ही उड़ गए, तो कइयों की हालत बेहद गंभीर हो गयी।

सन् 1347 में जब ये जहाज यूरोप पहुंचे, तो उन्हें रिसीव करने के लिए वहां भारी संख्या में लोग बंदरगाह पर पहुंचे थे। वहां उन्होंने देखा कि जहाज कब्रिस्तान बन चुके हैं। मृत व बीमार लोगों को किसी तरह जहाज से बाहर निकाला गया। लोग लाशें देख लोग भौचक्का थे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि आखिर यह सब क्यों और कैसे हुआ। अफसोस की बात तो ये थी कि उन्हें इस बात का जरा भी इल्म नहीं था कि यह संक्रामक रोग है और कुछ सालों में ही यूरोप की आधी आबादी को निगल जायेगा। मगर, यूरोप में यही होना बदा था। प्लेग धीरे-धीरे यूरोप के दूसरे हिस्सों में आग की तरह फैलने लगा और लाखों लोगों की जिंदगी छीन ली। यूरोप में जगह-जगह सामूहिक कब्रें खोदी गयीं और जैसे-तैसे शवों को दफनाया गया।

और तार-तार होते गए रिश्तों के महीन धागे

आपदा व महामारी रिश्तों को परखने का जरिया होते हैं। यूरोप में फैली महामारी ने भी रिश्तों के दूसरे मायने दिखाए। रोग जब तेजी से फैलने लगा, तो लोग डर के साये में जीने लगे थे। खौफ का आलम यह था कि पीड़ित व्यक्ति के पास कोई जाता नहीं था। उसके कपड़े भी नहीं छूता था। लोगों ने खुद को घरों में कैद कर लिया था। सामाज जैसा कुछ रह नहीं गया था। पड़ोसी तो दूर भाई-भाई, मियां-बीवी, बाप-बेटे तक एक दूसरे से कट गए थे। रिश्ते-नातों में दूरियां इतनी बढ़ गयी थीं कि मांएं अपने बच्चों को नहीं देखती थीं! मानवता-नैतिकता सब खत्म हो चली थी।

चूंकि, उस वक्त प्रशासनिक अफसरान भी इस बीमारी की जद में थे, सो प्रशासनिक कदम नहीं उठाए जा रहे थे। हर कोई अपनी मर्जी का मालिक था। महामारी के दौरान प्रख्यात इतालवी लेखक व पत्रकार गियोबानी बोकासियो फ्लोरेंस में थे। उन्होंने सबकुछ अपनी आंखों से देखा और अपनी किताब में उस हृदय विदारक दौर का बेहद मार्मिक रेखाचित्र खींचा था।

इस महामारी के बाद क्या!

करीब 5 साल यानी सन् 1352 तक तबाही मचाने के बाद ब्लैक डेथ का असर कम होने लगा, क्योंकि लोगों ने एहतियातन खुद को बीमार लोगों से दूर कर लिया था। लेकिन, यूरोप के समाज और वहां की अर्थव्यवस्था पर इसका व्यापक असर पड़ा था. आधी आबादी के खत्म हो जाने से यूरोप करीब-करीब सुनसान हो चुका था। इमारतें और फैक्टरियां खाली थीं। मगर, वक्त को तब भी गुजरना था। जिंदगी तब भी चलनी थी तो चली। काफी कोशिशों के बाद फैक्टरियों की बंद पड़ी मशीनों में हरकत हुई। चूंकि, आबादी कम हो गयी थी, इसलिए मजदूरी महंगी हो गयी। लिहाजा फैक्टरियों में बननेवाला सामान महंगा बिकने लगा। हां, खाद्य पदार्थों के दाम नहीं बढ़े, क्योंकि आबादी भी कम थी। ब्लैक डेथ के कारण लोगों में अंधविश्वास भी खूब फैल गया था। लोगों को लगता था कि भगवान ने मुंह फेर लिया, इसलिए यह हुआ। कुछ लोग इसे काला जादू भी कहने लगे थे। यूरोप की कला व संस्कृति को भी ब्लैक डेथ ने भरपूर नुकसान पहुंचाया था। कला-संस्कृति मृतप्रायः हो चली थी। खैर, तमाम तरह की दुश्वारियों के बीच यूरोप ने संभलने की पुरजोर कोशिश की। कला-संस्कृति और शासन के क्षेत्र में यूरोप के लोगों का जीवन दोबारा पटरी पर लौटा, बस वहां तक पहुंचने में उन्हें सैकड़ों साल लग गए।

https://roar.media/hindi/main/history/black-death-havoc-in-europe/

***

बुनियादी सुख-सुविधाएं और बेहतर माहौल मिलने से ही प्रसन्नता आती है

ठहाके लगाना खुशी का लक्षण नहीं

दिलीप मंडल

नारे की तरह दोहराने से नहीं आ जाएगी खुशी

जो जैसा चल रहा है, वह काफी नहीं है, इसे और बेहतर होना चाहिए। इस एक विचार ने दुनिया को बेहतर दिशा में बदला है

क्या आप उन लोगों में हैं, जो मॉर्निंग वॉक के समय पार्क में ठहाके लगाते हैं। मुमकिन है, आपने ऐसे लोगों को देखा होगा जो ऐसा करते हैं। हंसना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है और इससे तनाव भी दूर होता है, लेकिन अगर आप खुश नहीं हैं, तो भी क्या आप हंस सकते हैं? हंसने को अगर आप इलाज मानते हैं तो आपको हर हाल में हंसना चाहिए। इससे फर्क नहीं पड़ना चाहिए कि आपकी अपनी दशा क्या है और आसपास की परिस्थितियां कैसी हैं और आपके लिए वक्त कैसा है। लेकिन पांच मिनट के इस ठहाके को खुशी मान लेने का कोई कारण नहीं है।

भारत एक गरीब देश है। यहां सबसे ज्यादा निरक्षर रहते हैं। लोग बीमार भी खूब रहते हैं। औरतों की हालत भी अच्छी नहीं है। यूनाइटेड नेशंस डिवेलपमेंट प्रोग्राम (यूएनडीपी) के ह्यूमन डिवेलपमेंट इंडेक्स पर भारत दुनिया का 131वें नंबर का देश है। यूएनडीपी स्वास्थ्य, शिक्षा और स्त्री समानता आदि मानकों पर यह इंडेक्स हर साल तैयार करता है। ये आंकड़े बताते हैं कि भारत सुखी देश नहीं है। आबादी का एक हिस्सा सुखी जरूर है, लेकिन ज्यादातर लोग खुश नहीं हैं। कष्ट के बावजूद

ये जो लोग सुखी नहीं हैं, क्या वे खुश रह सकते हैं? इस बारे में अलग-अलग राय है। संयुक्त राष्ट्र ने जब हैपिनेस इंडेक्स बनाने की सोची तो इसके लिए एक सर्वे प्लान किया गया। इसमें 14 तरह के सवाल पूछे गए। ये सवाल अर्थव्यवस्था, नागरिकों की हिस्सेदारी, संचार और टेक्नॉलजी, सामाजिक विविधता, शिक्षा और परिवार, अच्छा महसूस करने का अहसास, पर्यावरण और ऊर्जा, भोजन और रहने की जगह, सरकार और नीतियां, कानून और व्यवस्था, स्वास्थ्य, धर्म और नैतिकता, आने-जाने की सुविधा और रोजगार से जुड़े थे। यानी अगर किसी देश में नागरिकों के जीवन में ये तमाम पहलू ठीक हैं, तो उस देश के नागरिकों को खुश माना जाएगा। जाहिर है कि भारत इनमें से ज्यादातर मानकों पर बेहतर स्थिति में नहीं है। यही वजह है कि वर्ल्ड हैपिनेस इंडेक्स पर भारत 133वें नंबर का देश है। ह्यूमन डिवेलपमेंट और हैपिनेस के इंडेक्स पर भारत का लगभग एक ही पायदान पर होना बताता है कि बिना विकास और मानवीय सुख सुविधाओं और बेहतर परिस्थितियों के खुशी नहीं मिल सकती। लेकिन एक विचार यह भी है कि सुख और खुशी का ऐसा कोई संबंध नहीं है। इस सोच के मुताबिक आपके जीवन में चाहे जितनी तकलीफ हो, आपको खुश रहना चाहिए। देश और समाज का चाहे जो हाल हो, आप प्रसन्न बने रहें। इस विचार को मानने वाले कम नहीं हैं। तमाम तरह के बाबा और महात्मा बताते हैं कि हर हाल में खुश रहना चाहिए, संतुष्ट रहना चाहिए। ये लोग खुशी को वस्तुगत स्थितियों से परे की चीज मानते हैं। इनका लगभग अकाट्य सा दिखने वाला तर्क होता है कि सबसे अमीर आदमी भी नाखुश हो सकता है। सोने के पलंग पर भी नींद न आने की समस्या हो सकती है और पत्थर पर लेटा आदमी भी चौन की नींद लेता है वगैरह-वगैरह।

कोई संत-महात्मा या वेलनेस एक्सपर्ट कह सकता है कि दीन-दुनिया को भूलकर अगर आप आश्रम या इनके रिसॉर्ट में आ जाएंगे तो आपको खुशी का अहसास होगा। आपके जीवन की स्थितियां स्थायी तौर पर नहीं बदलेंगी, लेकिन आपके मानसिक कष्ट दूर हो जाएंगे। ऐसे प्रोग्राम में शामिल होने के दौरान आप किसी के संपर्क में नहीं होंगे। आप अखबार नहीं पढ़ेंगे, टीवी-रेडियो से दूर रहेंगे, मोबाइल फोन और इंटरनेट आपके पास नहीं होगा। आप यहां अपने-आप के साथ रहेंगे। इस तरह आपके सारे तनाव दूर हो जाएंगे, आपके मानसिक कष्ट समाप्त हो जाएंगे। हालांकि एक या दो हफ्ते के बाद जब वही व्यक्ति अपने मूल स्थान यानी ओरिजनल पोजिशन पर लौटता है, तो यह कह पाना मुश्किल है कि उसकी मानसिक स्थिति का बदलाव कितना स्थायी रह पाता है। अपने आप से साक्षात्कार और खुद से संवाद एक अच्छी चीज है, लेकिन यह कह पाना मुश्किल है कि इससे खुश होने की स्थायी स्थितियां पैदा हो जाती हैं।

यह विचार कि सुखी हुए बिना खुश रहा जा सकता है अपने आप में एक छल भी है। यह विचार कहता है कि गरीबी और अमीरी की खाई के बने रहते हुए भी गरीबों को खुश रहना चाहिए या कि सरकार अगर स्वास्थ्य पर पर्याप्त खर्च न करे और लोग बीमार रहें, तो भी खुश रहना मुमकिन है। अगर शिक्षा का समुचित बंदोबस्त नहीं है, रोजगार घट रहे हैं, और जीवन में घनघोर अनिश्चय है तो भी खुश रहना चाहिए। कानून और व्यवस्था खराब हो और महिलाओं का जीवन असुरक्षित हो तो भी खुश रहना मुमकिन है। राजकाज में जिन समुदायों की हिस्सेदारी नहीं है और जो आर्थिक-सामाजिक जीवन में अलग थलग पड़े हुए हैं, उन्हें भी खुश रहना चाहिए। बदलाव की इच्छा

दरअसल स्थितियों को दुरुस्त किए बिना खुश रहने का विचार यथास्थिति को बनाए रखने का दर्शन है। मानव सभ्यता आगे इसलिए बढ़ी है कि मनुष्य के भीतर बेहतर करने और पाने की लालसा है। असंतोष इस मायने में एक सकारात्मक मानवीय गुण है। जो जैसा चल रहा है, वह काफी नहीं है, इसे और बेहतर होना चाहिए। इस एक विचार ने दुनिया को बेहतर दिशा में बदला है। अनावश्यक दुखी नहीं रहना चाहिए। लेकिन जब हालात तकलीफदेह हों तो उन हालात को बदलने की जरूरत होती है न कि यह कहने की कि हालात कैसे भी हों, हम तो खुश हो लेंगे, ठहाके लगा लेंगे। आप लगा भी सकते हैं, लेकिन पार्क में ठहाके लगाकर जब आप घर लौटेंगे तो देश और काल की तमाम समस्याएं मुंह बाए आपका इंतजार कर रही होंगी। सुख की तलाश कीजिए, खुशी पीछे-पीछे चलकर आएगी।

– नवभारत टाईम्स से साभर

***

13 अप्रैल, 2018 को दैनिक जागरण में प्रकाशित लेख

स्मरण के नाम पर रस्म अदायगी

इस पर विचार करना होगा कि महापुरुषों का रस्मी तौर पर स्मरण करने से हमें आखिर क्या हासिल हो रहा है

डॉ. उदित राज

पिछले कुछ वर्षो से डॉ. आंबेडकर की जयंती कुछ ज्यादा ही जोरशोर से मनाई जा रही है। इस बार भी ऐसा ही होता दिख रहा है। सत्तापक्ष के साथ-साथ विपक्षी दल भी डॉ. आंबेडकर के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने की तैयारी कर रहे हैं। दो अप्रैल को भारत बंद के बाद सभी राजनीतिक दल खुद को दलित हितैषी बताने में कोई कसर नहीं रहने देना चाहते, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि चाहे डॉ. आंबेडकर हों अथवा अन्य महापुरुष हमारे समाज में उनका स्मरण रस्म अदायगी के तौर पर ही अधिक होता है। महापुरुषों का स्मरण करके कर्तव्य की इतिश्री अधिक की जाती है। इस सिलसिले को देखते हुए इस पर विचार करना होगा कि आखिर महापुरुषों का रस्मी तौर पर स्मरण करने से हमें क्या हासिल हो रहा है? इस पर न केवल राजनीतिक एवं सामाजिक संगठनों, बल्कि खुद दलित समाज को भी विचार करना चाहिए।

महापुरुषों के विचार पढ़ना और उन्हें दोहराना हमारी परंपरा का हिस्सा है, लेकिन जब उन्हें आत्मसात करने की बारी आती है तो हम इस मोर्चे पर मात खा जाते हैं। बाबा साहब डॉ. भीमराव आंबेडकर के बारे में भी यही बात सटीक बैठती है। 14 अप्रैल को उनकी जयंती के अवसर पर देश भर में व्यापक स्तर पर कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, लेकिन अगर समाज की मौजूदा स्थिति और असंतोष को देखें तो लगता है कि हम बाबा साहब के विचारों को आदर्श रूप में नहीं अपना पाए हैं। आंबेडकर जयंती पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों में लगेगा कि आज ही सामाजिक व्यवस्था दुरुस्त होकर सामाजिक क्रांति हो जाएगी, लेकिन कार्यक्रमों से निकलते ही हम उन विचारों एवं आदर्शो को सभागार में ही छोड़ आते हैं। फिर से अपनी जाति और पहचान के दायरे में सिकुड़ जाते हैं। केवल आंबेडकर ही नहीं, बल्कि गांधी जी हों या अन्य महापुरुष उनके मामलों में भी यही देखने को मिलता है। गांधीजी ने तो यहां तक कहा था कि आजादी के बाद राज्य के अस्तित्व की भी दरकार नही होगी और हर गांव अपने आप में आत्मनिर्भर हो जाएगा। यहां तक कि उन्होंने तो कांग्रेस को ही भंग करने तक का सुझाव दे दिया था, लेकिन असल में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

गांधीजी, नेहरू या सुभाष चंद्र बोस या भगत सिंह, इनके विचारों को अंगीकार करना अभिजात्य वर्ग की आवश्यकता नहीं है। पहले से ही यह समाज अच्छी स्थिति में रहा है तो उसके ऊपर शायद इनके विचारों का मुलम्मा न चढ़े। महापुरुषों के विचारों को भारतीय समाज मानता तो क्या हमारा देश

अमेरिका, चीन, रूस जैसा विकसित नही होता। मध्यकाल में कबीरदास के जो क्रांतिकारी बोल थे, कितनों ने उन्हें अपनाया? असल में उन्हें सराहते सभी हैं, लेकिन अपनाते बहुत कम हैं। अगर हम इन्हें अपना लें तो उन तमाम सामाजिक चुनौतियों से पार पा सकते हैं जो इस समय देश के समक्ष दस्तक दे रही हैं। समाज में अगर सभी अपनी भूमिका का सही रूप से निर्वहन करें तो शायद असंतोष की यह आग जोर ही न पकड़े, लेकिन यदि किसी भी पक्ष की ओर से जरा भी चूक हुई तो देश को ही इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा। बीते दो अप्रैल को देश में भारत बंद के दौरान इसकी बानगी भी नजर आई।

दलित संगठनों द्वारा बुलाया गया भारत बंद एक तरह की अनियंत्रित मिसाइल ही कहा जाएगा और फिलहाल इसका अंदाजा लगाना भी मुश्किल है कि इसका निशाना आखिर कहां जाकर लगेगा। इसे मूलतः दलित नौजवानों के गुस्से की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। इसका सबसे खास पहलू यही रहा कि अखिल भारतीय स्तर पर इसका असर देखा गया। कोई नेता या संगठन इसके नेतृत्व की दावेदारी नहीं कर सकता, क्योंकि यह स्वतः स्फूर्त था। जब भारत बंद होने लगा तब जरूर कुछ नेता और संगठन श्रेय लेने के लिए आगे आने लगे। इसमें दलित विचारकों और नेताओं से कहीं अधिक समाज को सोचना होगा कि आखिर कहां पर चूक हो रही है? इस आंदोलन के गर्भ में कई बाते समाहित हैं जिन पर समय रहते चर्चा करना बेहद जरूरी है। अगर हम उन मुद्दों की पड़ताल करेंगे तो उनका समाधान हमारे उन महापुरुषों की दिखाई राह में ही नजर आएगा जिनका हम प्रतीकों के तौर पर तो बहुत इस्तेमाल करते हैं, लेकिन उसे जीवन में नहीं उतार पाते।

विकसित देश बनने की आकांक्षा के बीच हमें निश्चित रूप से यह समझना होगा कि आंतरिक द्वंद्व चाहे किसी भी समाज में कायम हों उस समाज को उन द्वंद्वों को खत्म करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। इसमें चीन से ही सबक लिया जा सकता है। चीन के महान क्रांतिकारी नेता माओत्से तुंग समाज के अंतर्विरोध को खत्म करते रहे और उन्होंने चीनी समाज को एक सूत्र में पिरोने में काफी हद तक सफलता भी हासिल की। दो अप्रैल की घटना का असर उत्पादन, शिक्षा और विकास पर पड़ना ही था जिसकी कीमत सभी को चुकानी पड़ेगी। हमें इस पर भी मनन करना होगा कि देश की इतनी बड़ी आबादी को उत्पादन, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय सेवा आदि से वंचित करके कैसे विकसित भारत बनाया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा एससी-एसटी एक्ट के एक प्रावधान में परिवर्तन और विश्वविद्यालयों के शिक्षकों में भर्ती से संबंधित निर्णय ने दलितों के असंतोष को भड़काने में चिंगारी का काम किया। जो भी हो, लेकिन एक बात जरूर प्रमाणित हो गई है कि अब दलितों और पिछड़ों को अपमानित और शोषित करके नहीं रखा जा सकता, मगर उससे पहले दलित समाज को भी अपने आंतरिक मतभेद सुलझाने होंगे और एक व्यापक दृष्टि विकसित करनी होगी। अनावश्यक विरोध और अपरिहार्य विरोध के बीच में रेखा खींचनी होगी।

एक तरह से डॉ. आंबेडकर के विचारों को खुद दलितों ने ही नहीं अपनाया और इस तरह अपना ही अहित किया है। वे खुद ही तमाम विभाजित रेखाओं में बंटे हैं। यही वजह है आज भी उनके हितों पर तलवार लटकती रहती है और उन्हें इसके लिए आवाज बुलंद करनी पड़ती है। इस बार भारत सरकार 14 अप्रैल को जस्टिस डे के रूप में मना रही है, लेकिन इन्हें कौन न्याय देने वाला है जब ये खुद जातिवाद के जहर से नहीं निकल रहे हैं। विचार पढ़ने और बोलने से जीवन नहीं बदलते, बल्कि व्यवहार में उतारने से अपना असर दिखाते हैं।

***

परिसंघ की वेबसाइट पर ऑनलाइन सदस्य बनें

अनुसूचित जाति/जन जाति संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ की वेबसाइट www.aiparisangh.com पर अब ऑनलाइन सदस्यता का प्रावधान कर दिया गया है। वेबसाइट पर जाकर कोई भी सदस्यता शुल्क की ऑनलाइन पेमेंट करके वार्षिक एवं आजीवन सदस्य बन सकता है। इस पर डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड, नेट बैंकिंग आदि सभी माध्यमों से पेमेंट की जा सकती है। अब कोशिश रहे कि ज्यादातर ऑनलाइन ही किया जाए, फिर भी यदि सदस्यता फार्म और डोनेशन की रसीदें छपी हुई चाहिए तो राष्ट्रीय कार्यालय में सुमित मो . 9868978306 से सम्पर्क किया जा सकता है।

परिसंघ के पदाधिकारियों से निवेदन है कि प्रयास करके अधिक से अधिक लोगों को सदस्य बनाएं। यदि प्रदेश या जिले स्तर के पदाधिकारी अन्य लोगों को सदस्य बना रहे हैं तो वे फार्म में रेफर्ड बाई के कॉलम में अपना नाम अवश्य लिखें, इससे राष्ट्रीय कार्यालय को पता लग सकेगा कि किस पदाधिकारी द्वारा कितना ऑनलाइन सदस्य बनाया गया है। इसके अलावा वेबसाइट पर परिसंघ का संक्षिप्त परिचय एवं राष्ट्रीय अध्यक्ष के परिचय के साथ-साथ राष्ट्रीय एवं प्रदेश पदाधिकारियों के फोटो के साथ पता एवं मोबाइल नंबर भी दिया गया है, (http://aiparisangh.com/office-bearers/) ताकि जो लोग अलग-अलग प्रदेशों से वेबसाइट देखें उन्हें पता लग सके कि उस प्रदेश के किस पदाधिकारी से सम्पर्क किया जा सकता है। इसके अलावा 'वॉयस ऑफ बुद्धा' भी वेबसाइट पर जाकर पढ़ा जा सकता है।

संसद मार्ग पर भव्य रूप से मनायी गयी डॉ. अम्बेडकर की जयंती

बोधिसत्व, विश्वरत्न बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी की जयंती डीओएम परिसंघ द्वारा संसद मार्ग पर मनाई गई

दलित, ओबीसी एवं अल्पसंख्यक (डीओएम) परिसंघ द्वारा बोधिसत्व, विश्वरत्न, संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 127वीं जयंती संसद मार्ग, नई दिल्ली पर बड़े धूम-धाम से मनायी गयी। जिसमें दिल्ली एवं कई राज्यों से आए परिसंघ के पदाधिकारियों ने भारी संख्या में भाग लिया। बाबा साहेब को श्रध्दा-सुमन अर्पित किया गया और आए हुए लोगों ने संकल्प लिया की यदि बाबा साहेब के संविधान से कोई छेड़-छाड़ करेंगा तो अब दलित, ओबीसी एवं अल्पसंख्यक चुप नहीं बैठेगा और अपने संवैधानिक अधिकार को लेकर संसद से सड़क तक आंदोलन करेगा।

परिसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. उदित राज जी जयंती के शुभ अवर पर सांसद मार्ग पर पहुंचकर डॉ. अम्बेडकर की प्रतिमा पर फूल-माला अर्पण किया। इस मौके पर डीओएम परिसंघ के संरक्षक डॉ. उदित राज ने कहा की इस समय दलित, पिछड़ों और मुस्लिमों को एक जुट होने की जरूरत है क्योंकि इस समय आरक्षण पर खतरा मंडरा रहा है। अगर इसे बचाने के लिए सभी आगे नहीं आए तो वह दिन दूर नहीं जब मनुवादी ताकतें आरक्षण को सामप्त कर देंगी और वह अपने मनसूबों में कामयाब हो जायेंगे। महिलाओं को भी बराबर का अधिकार दिलाना चाहते थे। लेकिन कुछ मनुवादियों के विरोध करने की वजह से बराबरी का अधिकार नहीं दिला पाए। जैसे कि आज महिलाओं की भागीदारी पुरूषों के अनुपात में बराबरी की नहीं है। बाबासाहेब चाहते थे की पुरूषों के बराबर का अधिकार महिलाओं को भी होना चाहिए। आज जो बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा बनाया हुआ संविधान है जिसे संविधान को कमजोर करने की कोशिश की जा रही है और धीरे-धीरे अधिकार कमजोर किए जा रहे हैं। जिसकी वजह से देश में दलितों, मुसलिमों पर बलात्कार बढ़ रहे है। डीओएम परिसंघ अब मिल करके इसकी लाड़ाई लड़ेगा। इस मौके पर कई दलित, ओबीसी एवं अल्पसंख्यक संगठनों के पदाधिकारी जैसे - परमेंन्द्र (संयोजक डीओएम), बाबू लाल (कार्यालय प्रभारी, डीओएम, एवं अध्यक्ष बांस कामगार सेना), एस. पी. वर्मा (पी.सी. सी.एल.), कलीराम तोमर (भारतीय समता समाज), हुसेन वाहिद (सर सैयद मिशन फाऊंडेशन), सुनील चौरसिया (आदर्श चौरसिया मंच), डोंगरा सिंह (अखिल भारतीय लोधी महासभा), जितेन्द्र लोधी (लोधी राजपूत कल्याण संगठन), अमर पाल लोधी (लोधी इम्पाइमेन्ट एसोसिएशन), ओम प्रकाश (प्रान्तीय लोधी राजपूत सभा दिल्ली), आरिफ सिद्दिकी (इसलाही अजुंम सिद्दिकी कमीटि), एस. राहुल साहू (साहू राठौर महासंघ), हरपाल सिंह (अखिल भारतीय बंजारा संघ), दिनेश पासवान (अखिल भारतीय दुसाद उत्थान परिषद), हरेन्द्र पासवान (आजाद हिन्द युवा मंच), नरेन्द्र सैनी (फूला देवी मेमोरियल ट्रस्ट), मनोज कुमार (एस. सी/एस.टी. सी.ई.वी. ई एम पी. डब्ल्यू. ई. एल एशोसियशन 505 एमपीडब्ल्यु), डॉ. इकबाल (राष्ट्र शाक्ति फाऊंडेशन), मो. बिलाल (हमारा नारा भाई चारा)भारी संख्या में उपस्थित रहे।

- बाबूलाल
कार्यालय प्रभारी
मो. 9918023024

माल्यार्पण करते हुए डीओएम परिसंघ के संयोजक सर्वश्री परमेन्द्र, बाबू लाल , ओमप्रकाश सिंहमार, आर.के. वर्मा, राकेश पासवान, के. महेश्वर राज, संजय राज, सुमित कुमार, मेहन्द्र सिंह, श्रवण राज आदि

अम्बेडकर जयंती में जन समूह को संबोधित करते हुए डॉ. उदित राज जी

तमिलनाडु सम्मेलन में महिला प्रकोष्ठ के तत्वावधान में महिलाओं की भागीदारी

दिनांक 7 अप्रैल, 2018 को चेन्नई (तमिलनाडु) के तमिलसाई संगम राजा अन्नामलाई मंड्रम नियर हाई कोर्ट ऑफ मद्रास में साऊथ जोन का सम्मेलन तमिलनाडु के प्रदेश अध्यक्ष एस. करूपइया व उनकी टीम द्वारा हुआ जिसमें केरल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना, महाराष्ट्र से सभी पदाधिकारियों ने टीम सहित भाग लिया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि परिसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ.उदित राज जी थे। साथ ही डॉ. उदित राज जी की पत्नी प्रिन्सिपल कमीशनर ऑफ इनकम टैक्स श्रीमती सीमा राज जी ने सम्मेलन को संबोधित किया। तमिलनाडु से महिला प्रकोष्ठ का नेतृत्व श्रीमती महालक्ष्मी जी ने किया और महिला प्रकोष्ठ का आगाज तमिलनाडु में भी शुरू किया । कार्यक्रम में परिसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. उदित राज जी ने सभा को संबोधित करते हुए कहा की वक्त आ चुका है एक साथ जुडने और अपनी आवाज को उठाने का, 2 अप्रैल के भारत बंद के बाद से दलितों में एक दर्द निकल कर आया हैं इससे पहले दलित कभी इतनी बड़ी संख्या में इकठ्ठे नहीं हुए। वही परिसंघ महिला प्रकोष्ठ की राष्ट्रीय संयोजक श्रीमती सविता कादियान

पंवार जी ने कहा कि पूरे भारत में महिला प्रकोष्ठ लगातार आगे बढ़ रहा है। उसी कडी में तमिलनाडू में भी महालक्ष्मी जी के नेतृत्व में टीम का निर्माण हो रहा है, साथ ही सविता जी ने कहा की भारत की 50 प्रतिशत आबादी महिलाओं की है और राज्यसभा में महिलाओं की भागीदारी के लिए 33प्रतिशत आरक्षण का बिल पास होने के बाद भी आज तक लोकसभा में इस बिल को लाया नही गया। जिसके कारण 543 सीट होने के बावजूद सिर्फ 60-65 महिलाओं की भागीदारी होती है। आज पूरे देश भे महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय हैं बेटियां भी सुरक्षित नहीं हैं। आए दिन बच्चियों के साथ रेप की घिनौनी घटनाएं दिखाई और सुनाई पड़ रही हैं जोकि वास्तव मे चिंता का विषय हैं। आज महिलाओं को भी एक साथ आकर इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठानी होगी। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में तमिलनाडु व केरल की महिलाओं की भागीदारी रही ।

– सविता कदियान पंवार
राष्ट्रीय संयोजक,
परिसंघ महिला प्रकोष्ठ

***

गरीबों के मसीहाः बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर

14 अप्रैल बाबा साहेब, डॉ. भीम राव अंम्बेडकर की जयन्ती के रुप में मनाया जाता है। उनको श्रद्धांजलि, सम्मान तथा आभार प्रकट किया जाता है। बाबा साहब को आज हम भारत वासी नमन क्यों करते हैं ? क्योंकि वे एक महान विधिवेता, राजनीतिक नेता, दर्शनशास्त्री, मानवविज्ञानी, इतिहासकार, सुवक्ता, अर्थशास्त्री, शिक्षाक, सम्पादक, बहुसर्जक लेखक, क्रांतिकारी और बौद्ध धर्म के पुनःप्रवर्तक थे। वे भारतीय संविधान के निर्माता थे इसलिए 2012 में इतिहास टी.वी. और ब्छछ.प्ठछ चैनल के वोट द्वारा उन्हें महानतम भारतीय चुना गया था। हम (आदिवासी-मूलनिवासी, दलित) उन्हें विषेश रूप से इसलिए नमन करते हैं क्योंकि उन्होने हमें एक ऐसा संविधान दिया हैं जिसमें हम गरीबों का विषेश ख्याल किया गया है। हम गरीब, दीन-दुखियों के लिए उन्होंने क्या किया उसके बारे में आज हम सुनते-पढ़ते, उन पर मनन-चिंतन करते और विकास के कदम उठाते हैं। बाबा साहब ने संवैधानिक प्रवधान द्वारा हमारे लिए जो अधिकार दिया है उसे हासिल करने के प्रयास का संकल्प लाते हैं। उन्होंने हमारे लिए संविधान में समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार, संवैधानिक उपचार का अधिकार, पेसा कानून के द्वारा ग्राम सभा व वन अधिकार, मान्यता कानून के द्वारा वन पर अधिकार, अरक्षण का अधिकार आदि प्रदान किया है। जिनका हमें उपयोग करना है।

वे अपने लोगों को यह संदेश दिया करते थे-1. Educate! 2. Organize! 3. Agitate! (शिक्षित हो! संगठित हो! आंदोलन करो!) अपना विकास करने के लिए अपनी जाति, समाज की अस्मिता की रक्षा करने के लिए हमें शिक्षित होना है। बाबा साहेब से प्रेरणा लेना है कि वे कैसे इतने महान व्यक्ति बनें ?और वह है शिक्षा। उनका जन्म एक गरीब महार परिवार में सन् 14 अप्रैल 1891 में मध्यप्रदेश की महु छावनी में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री राम जी सकपाल और माता का नाम श्रीमति भीमा बाई था। उनके फौजी पिता शिक्षा की महत्ता को भली-भाँति समझते थे, इसीलिए सरकारी स्कूलों में अपने बच्चों की शिक्षा के लिए पैरवी करते थे। स्कूलों में इन अछूत बच्चों को अलग से बख्मदे में बैठाया जाता था। शिक्षक भी उनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते थे। अलग से पानी पीना पड़ता था। उन्हीं के शब्दों में '' चपरासी नहीं तो पानी नहीं ''। अगर चपरासी नहीं होता था तो उसदिन उन्हें पानी नहीं मिलता था, फिर भी उन्होंने स्कूल नहीं छोड़ा।

पिता, श्री रामजी सकपाल सेवा निवृत हुए, परिवार सतारा चला गया। अपने 14 वें भाई-बहनों में सिर्फ अम्बेडकर ही मैट्रिक की परीक्षा 1907 में पास कर सके। अपने समाज के पहले व्यक्ति बनें-मैट्रिक पास करने वाले। उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने बांम्बे एलफिस्टन कॉलेज में दाखिला लिया। 1912 में बांम्बे विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में डिग्री प्राप्त कर वे बड़ौदा सरकार में नौकरी करने की तैयारी करने लगे। इसी बीच बड़ौदा सरकार से स्कोलरशिप पाकर उन्होंने सन् 1913 में अमेरिका के कलेम्बिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र आदि विषयों में डिग्री प्राप्त किया। 1917 में जब वे भारत आ रहे थे तो उनकी सारी किताबें खो गयी। बड़ौदा सरकार में उनकी नियुक्ति सेना विभाग में सचिव के पद पर हुई। लेकिन कुछ ही समय के बाद उन्होंने नौकरी छोड़ दी। जीविका चलाने के लिए उन्होंने प्रकाशन, एकाउन्टैट एवं परामर्शदात्री का काम शुरु किया किन्तु नीच जाति होने के कारण सफलता नहीं मिली। सन् 1918 में बाम्बे के सिडेनहम कॉलेज में राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर बने वहां भी एक ही जग से पानी पीने का अन्य प्रोफेसरों ने विरोध किया। सन् 1919 में भारत सरकार का कानून बनाने के लिए ब्रिटिश सरकार का आमंत्रण मिला। 1920 में ''मूकनायक'' नामक पत्रिका का प्रकाशन उन्होंने प्रारभ किया। बॉम्बे उच्च न्यायलय में उन्होंने वकालत किया। उसी समय अछूतों को शिक्षित होने की शिक्षा दी। कॉलेज में प्रिन्सिपल एवं प्रकाशन का काम भी उन्होंने किया। जब देश स्वतंत्र हुआ तो कांग्रेस सरकार ने अम्बेडकर जी को प्रथम विधि मंत्री के रूप में सेवा देने के लिए आमंत्रित किया। सन् 1947 के 19 अगस्त को संविधान ड्राफ्ट कमिटी के अध्यक्ष नियुक्त हुए। और इस संविधान के द्वारा उन्होंने हमें समानता, स्वतंत्रता , शोषण के विरुध, धर्म की स्वतंत्रता, सांस्ककृति एवं शिक्षा तथा संवैधानिक उपचार का अधिकार प्रदान किया है। इसी महान पुरुष का आज हम नमन करते हैं। साथ ही विचार करते हैं कि हम अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए कितने चिंतत रहते हैं। उनके पिता श्री रामजी सकपाल अपने बच्चों की पढ़ई के लिए स्कूलों में पैरवी करते थे। हम अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए क्या करते हैं ? अम्बेडकर ने स्वयं छुआ-छूत और अन्य समस्याओं का समाधान करते हुए उच्चतम शिक्षा प्राप्त की। आज पढ़ाई करने वाले बच्चे कितना हौसला रखते हैं ?अपना लक्ष्य कितना ऊँचा रखते हैं ?

आज हमारे पास कदम-कदम पर स्कूल हैं। 9 अप्रैल 1013, के नवभारत में आप ने पढ़ा होगा जिसका शीर्षक था ''बदहल है स्कूल, सरकार कूल-कूल''। उसी में एक कैपशन भी थी(डरो नहीं बेटा वो भूत बंगला नहीं सरकारी पाठशाला है) प्रदेश (छ.ग.) में 800 स्कूलों की हालत जर्जर है। कब सिर पर छत गिर जाये भगवान जाने। स्कूल भवन की अपेक्षा आहातों की सुन्दरता को बढ़ाया जा रहा है। आप अखीर पुनः देख लीजिए, अरबों रुपये स्कूलों के लिए खर्च किये जा रहे है। नई दुनिया, 17 जनवरी 2015 लिखता है, 'आठवीं के चार लाख बच्चे नहीं जानते

जोड़ना-घटाना'। चौकाने वाले आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं- 75 प्रतिषत बच्चे दहाई अंक को जोड़-घटा नहीं सकते, 1.5 प्रतिशत बच्चे आठवीं के 1 से 9 तक के अंकों को पहचानते नहीं, 68 प्रतिशत बच्चे अंग्रेजी के सरल वाक्य भी नहीं पढ़ पाते, 1.8 प्रतिशत बच्चे हिन्दी के क, ख, ग भी नहीं पढ़ पाते, यह है छत्तीसगढ़ के शिक्षा का स्तर - 'देश में सबसे निचले पायदान पर'। दो फासदी बच्चों का निजी स्कूलों में पलायन हो रहा है। प्रदेश के स्कूली शिक्षा मंत्री कहते हैं, 'सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता सुधारने का प्रयास लगातार किया जा रहा है।' फिर भी विड़म्बना यह है कि आज बच्चें पढ़ने स्कूल नहीं जाते, खाने जाते हैं। शिक्षक पढ़ाते नहीं खाना खिलते हैं। अपर से जेनेरल प्रोमोशन। आप ही सोचिए ऐसे में हमारे बच्चें शिक्षित कैसे होंगे ? इसलिए 9 अप्रैल 2013 के अखबार में कहा गया है, ''सर्व शिक्षा अभियान-कोई पढ़े न पढ़े-हम बढ़े।'' इस बात को आज हमें समझना है कि शिक्षा के नाम से क्या हो रहा है। कौन बढ़ रहे हैं ? पूंजीपति और नेताओं के बच्चे ही न ? जो देश-विदेशों के अच्छे से अच्छे अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में बढ़ते हैं। नौकरी किसे मिलेगी ? इन्हीं बच्चों को न! दूसरी ओर हमारे बच्चों कभी बात की गंभीरता को जानते हुए पढ़ाई करनी होगी। अनुशासन की महत्ता को समझना होगा। हर क्षेत्र में प्रतियोगिता के लिए अपने आप को तैयार करना होगा। बाप की कमाई से 'ऐश करो' की भावना को त्यागना होगा। अम्बेडकरजी से प्रेरणा लेनी होगी। लक्ष्य ऊँचा रख कर सतत प्रयास करना होगा। तभी मंजिल की प्राप्ति होगी।

2. दूसरा उनका संदेश था ''संगठित हो!'' और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 1936 में उन्होंने स्वतंत्र मजदूर पार्टी' का निर्माण किया तथा 15 सीटें उन्होंने जीता। यह उनके संगठनात्मक ताकत एवं कला का प्रमाण है।

संगठित होने के लिए भेदभाव, संकीर्णता और स्वार्थ का त्याग करना आवश्यक है। उस समय की बात सोचिये जब एक ही गॉव में उरॉव, लुहार, महार, अहीर, कुम्हार, चिखवा, पनिका, डोम, घंसिया, तुरी, रावतिया, भुंया आदि भाईचारे की भावना से रहते थे तथा एक दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति करते थे। कठिनाइयों में एक दूसरे की मदद करते थे। अन्योन्याश्रय का सुन्दर समागम था। अपने गॉव में आज आप की स्थिति कैसी है ? दूसरे लोग यह नहीं चाहते कि हम संगठित हों और अपने अधिकारों की मांग करें, इसलिए फूट डालो और शासन करो की नीति का जहर फैला रहे हैं। और हम अज्ञानी इसके चक्कर में पिसते जा रहे हैं। पूर्व में हम भाई-भाई थे आज एक दूसरे के दुश्मन बन बैठे हैं।

जरा सोचिए चुनाव के समय क्या होता है ? 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का शिकार होते हैं या संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं ? अपने ही बीच से दस व्यक्ति को एक ही चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ना है या एक को ? आपस में हमारे वोट को बंटना है या एक होना है ? गॉव के लोगों को दस पार्टियोंमें बंटना है या एक होना है ? पैसे लेकर वोट देना है या निश्पक्ष बिना पैसे का ? अगर पैसे ले कर तो तैयार हो जाइये विस्थापित होने के लिए। क्योंकि पैसा देने वाला और किसी से पैसा लेता है और देता है। चुनाव जीतने के बाद वह नेता पैसा देने वालों के लिए काम करेगा या लेने वालों के लिए ? देने वालों के लिए ही न! देने वाले कौन हैं ? पूंजीपति व उद्योगपति। उन्हें लाभ पहुंचाने के लिए ही नियम और कानून बनाएगा, जैसे कोयला, भूमि अधिग्रहण अध्यादेश इत्यादि। लोक हित के नाम आपका विनाष और चंद पूंजीपति व उद्योगपतियों का विकास चंद पूंजीपति व उद्योगपतियों के लिए अच्छा दिन लाएगा और किसान-आदिवासियों के लिए बुरा। मीठी बोली का जहर देकर आपको अपने पैरों कुलहाड़ी मारवाएगा, स्वयं अपने लिए कब्र खुदवाएगा। मेरी आप प्रत्येक से यही अर्जी है कि एक बार संगठित होकर यह दिखा दीजिये कि जिसे आप चाहते हैं हरा सकते हैं या जिता सकते हैं। साथ ही ऐसे व्यक्ति को वोट दीजिए जो आपका दुःर्ख दर्द समझता हो, आप की अपने अधिकार प्राप्ति के संघर्ष में आप का साथ दे, आपका नेतृत्व कर सके। आज हमारे उपर विस्थापन रुपी घनघोर बादल मंडरा रहा है, कोई कहता है सिर्फ ईसाई उरॉवों का विस्थापन होगा, क्या एक ही गॉव या क्षेत्र में रहने पर भी केवल उन्हीं का विस्थापन होगा ? जरा सोचिए!

3. बाबा साहेब का तीसरा मंत्र था ।हपजंजमए आंदोलन करो। और अपने हक्क को प्राप्त करो, मांगो नहीं, छीन लो क्योंकि यह तुम्हारा हक्क है तुम्हारा अधिकार, जिसे संविधान ने तुम्हें प्रदान किया है। 1927 में उन्होंने छुआ-छूत के विरुद्ध जन आंदोलन किया। सत्यग्रह कर मंदिर में अछूतों को प्रवेश कराया। उच्च जाति के लोगों के कुएं/तालाब से पानी पिया। मनुस्मृति को जलाया जो कि जाति भेद का आधार है। लंदन से लड़झगड़ कर दलितों के लिए दोहरी मताधिकार को लाया था। पर दुर्भाग्य, 1932 के पूना पैक्ट द्वारा उन्होंने उसे खो दिया। इसके विरोध में गांधी ने पूना में अनसन किया। कई दलितों को मार डाला जा रहा था। अंततः विवश हो कर अंम्बेडकर जी को दोहरी मताधिकार को वापस लेना पड़ा।

उनका कहना था राजनीतिक और आर्थिक सुधार के लिए सामाजिक सुधार आवश्यक है। हम सोचें हमारे समाज में कहां सुधार की आवश्यकता है, ताकि राजनीतिक और आर्थिक सुधार हो सकें। राजनीतिक ताकत पाने के लिए कहॉ सुधार की आवश्यकता है ? और आर्थिक ताकत पाने के लिए कहां आंदोलन की आवश्यकता है। कहा जाता है जब यहां बड़े-बड़े उद्योग लगेगे तो क्षेत्र का विकास होगा। यहां के लोगों का विस्थापान होगा तो किसका विकास ? विकास के नाम गॉव में सड़क बन रहा है, बिजली लग रही है। सड़क बनता है हमारी जमीन पर और उस सड़क पर किसकी गाड़िया दौड़ती है सेठ साहूकार की न ? हम तो दोनों ओर से लुट गये। जमीन गई ऊपर से हमारे पैसे इन गाड़ियों का उपयोग करने पर। किसका विकास हो रहा है ? इसलिए सचेत होइए आंदोलन कीजिए अपने हक को हॉसिल कीजिए। अगर आपके गांव में सड़क बनता है तो आपका पहला हक बनता है कि आप उस पर गाड़ी दौड़ाए। आप उस सड़क पर गाड़ी चलाइये और अपने नुकशान की भरपाई कीजिए। आंदोलन कीजिए कि इस पर कोई गाड़ी नहीं चलाएगा, आप स्वयं चलाएंगे। परमिट तो आपको देना चाहिए क्योंकि आप की जमीन गई है, दूसरों से क्यों लें ? अपने अधिकार का उपयोग कीजिए और आर्थिक ताकत को प्राप्त कीजिए। अपनी सोच में परिवर्तन लाइये सब कुछ हो जाएगा। डर किस बात का ? जब जंगल था, तो आप ने बाघ-भालू का सामना किया, इस डर का भी सामना कीजिए। नेपोलियन ने का था छवजीपदह पे पउचवेपइसम इसलिए कुछ भी असंभव नहीं है, जब हौंसला बुलांद हो। और यह बुलंद हौंसला शिक्षा, आर्थिक ताकत और संगठन से प्राप्त होगा।

बाबा साहेब की जयंती मनाना तब सार्थक होगा जब हम उनके अमर वचनों पर मनन चिंतन करके नई षिक्षा प्राप्त करेंगे। उस शिक्षा से संगठित होंगे और आंदोलन करके भी अपने अधिकार को पायेंगे। विकास के हर आयाम को छूगे। यही बाबा साहेब के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

– गणेश येरेकर
मराठवाडा सचिव
नसोसवायएफ, (महाराष्ट्र)
09811326857

How Europe exported the Black Death

Andrew Lawler

The medieval Silk Road brought a wealth of goods, spices, and new ideas from China and Central Asia to Europe. In 1346, the trade also likely carried the deadly bubonic plague that killed as many as half of all Europeans within 7 years, in what is known as the Black Death. Later outbreaks in Europe were thought to have arrived from the east via a similar route. Now, scientists have evidence that a virulent strain of the Black Death bacterium lurked for centuries in Europe while also working its way back to Asia, with terrifying consequences.

At the Society for American Archaeology meetings earlier this month in Orlando, Florida, researchers reported analyzing the remains of medieval victims in London; Barcelona, Spain; and Bolgar, a city along the Volga River in Russia. They determined that the victims all died of a highly similar strain of Yersinia pestis, the plague bacterium, which mutated in Europe and then traveled eastward in the decade following the Black Death. The findings "are like pearls on a chain" that begins in western Europe, said Johannes Krause at the Max Planck Institute for the Science of Human History in Jena, Germany, an author of a soon-to-be-published study. (The lead author is Maria Spyrou, also at Jena.)

That chain may have stretched far beyond Russia. Krause argues that a descendant of the 14th century plague bacterium was the source of most of the world's major outbreaks, including those that raged across East Asia in the 19th and 20th centuries and one afflicting Madagascar today. Eric Klingelhofer, an emeritus archaeologist at Mercer University in Macon, Georgia, called Krause's presentation "a good piece of research." But molecular microbiologist Holger Scholz at Munich, Germany's Bundeswehr Institute of Microbiology is skeptical. "I just think it's not very likely that a strain from China came to Europe, survived there for a couple of hundred years, and moved back to China," she said. "That sounds pretty adventurous."

Advances in sequencing the DNA of pathogens found in ancient human skeletons are driving new research—and debate—on the spread of plague. Thanks to a series of recent findings, the notion that plague remained in Europe for centuries after the Black Death, rather than arriving in repeated waves from Asia as historians long assumed, is gaining ground. A team led by Lisa Seifert at Munich's Ludwig Maximilian University reported in January that the Black Death strain persisted in Europe for at least 3 centuries, based on DNA sequences from eight skeletons at two burial sites in Germany that spanned the 14th to the 17th centuries. The sequences were "highly similar" to those from earlier European victims, according to the study, which included Scholz. While not precluding continued waves of plague coming from Asia, the team concluded that there was "a long-time persistence of the pathogen in a not-yet-identified reservoir"—perhaps rats. Also in January, a team led by Kirsten Bos at Jena's Max Planck Institute reported further evidence that a descendant of the Black Death strain hung on in Europe, implicating it in the last major European plague outbreak, in Marseille, France. Using DNA from the teeth of five individuals who died in 1722, the group found that the Y. pestis strain in Marseille likely evolved from the Black Death. "Our results suggest that the disease was hiding somewhere in Europe for several hundred years," said Bos, whose team included Krause.

Now, Krause has traced the Black Death's eastward spread. His team studied skeletons from a cemetery near the Tower of London firmly dated to 1348–1350, in the wake of the Black Death, as well as from a Barcelona cemetery radiocarbon-dated to the mid-14th century. The Russian evidence comes from a site that included coins from 1360; the burial is estimated to have taken place between the early 1360s and 1400. DNA sequencing from all three places revealed the same strain of Y. pestis. This strain appears to be the ancestor of the one that killed millions in 19th century China, based on phylogenetic clues. "If the plague in China was actually European in origin, it's a cruel irony of history," says Klingelhofer, who notes that this was the era when Western powers dominated China. Krause adds that the plague affecting Madagascar as recently as last year also seems genetically related to the variety that spread east from Europe in the 14th century. Researchers are eager to create a plague family tree in order to understand the movements and impact of different varieties of Y. pestis across time and space. Krause argues that three of the four branches of plague seem to have evolved in Asia. But he says the branch related to the strain that developed in Europe immediately after the Black Death has proved the most mobile and devastating.

Krause admits that between 14th century London and 21st century Madagascar, there are "a lot of steps missing" to identify the precise movements of the deadly bacterium. But he says that understanding plague's long journey could help researchers limit its future spread.

http://www.sciencemag.org/news/2016/04/how-europe-exported-black-death

***

Udit Raj calls Bharat Bandh against reservation 'anti-national'

BHASHA SINGH

BJP MP Udit Raj told NH today's "ill-advised Bandh will boomerang. It's a Frankenstein that the upper castes will regret having created. It is a 'bhasmasur' as all Dalits and OBCs will consolidate"

BJP Member of Parliament and Dalit leader Udit Raj does not mince his words. Today's Bharat Bandh, he said, was designed to divide society and hence anti-national, he fumes. The 'Bharat Bandh' called by Dalit organisations on April 2 was not directed against any segment of society, he says to National Herald. "Their anger and frustration was directed against a Supreme Court ruling and the Union Government's failure to represent the case adequately before the apex court," the MP asserts before condemning Monday's Bharat Bandh called against 'reservation' .

Why do you say Monday's Bharat Bandh was anti-national?

Because upper castes dominate everywhere. Starting from the media to the judiciary, from bureaucracy, services to business, how many Dalits can you find ? They are nowhere. Everywhere the upper castes are dominant. One would have expected them to be generous, having done so well for themselves. But no, they seem to be so petty that they are unwilling to share an inch of the space. How can any nation prosper if the majority of the people are suppressed ? After all, they are the consumers and constitute a major market force as well.

What will be the impact of Monday's Bandh?

It will help consolidate the unity of Dalits and OBCs and lead to further polarisation of society. The ill-advised Bandh will boomerang. It is a Frankenstein that the upper castes will regret having created.How do you explain the large number of Ambedkar statues which are being vandalised?They are scared of Babasaheb Ambedkar. It was Dr Ambedkar who had challenged Brahminical institutions and the law laid down in Manusmriti. Even after so many years, the challenge they face is mostly from followers of Babasaheb Ambedkar. That is why the statues are bearing the brunt of their hatred. That's why so many of his statues are being vandalised.

But Bharatiya Janata Party, which has 40 Dalit MPs, claims to have the interests of the Dalits at heart...I

would only like to point out that it's a myth that just because a political party has more Dalit MPs, the party necessarily enjoys the support of Dalits. In no constituency do Dalit votes exceed 20 or 25% of the voters. Nobody gets elected even from reserved seats with votes from Dalits alone. Indeed the victory from reserved seats is engineered by other forces. Those who make such simplistic assessments are divorced from reality and have little connect with the ground. Dalits actually win with the votes from supporters of essentially anti-Dalit parties.

Udit Raj: "They (upper castes) are unable to accept that people who would not dare look up to them and always sit at their feet earlier are now demanding equality and opportunity"

How do you explain the simmering anger among Dalits?

After all the BJP and Prime Minister Modi's favourite slogan has been 'Sakba Saath, Sabka Vikas' ...Several factors have contributed to this. Increasing privatisation, decline in the number of openings in the Government, joblessness, vacant posts getting filled by general candidates, the denial of scholarship in universities and of course the last straw was the Supreme Court's ruling designed to dilute the provisions of the SC-ST (Prevention of Atrocities) Act. That is why the April 2 Bandh was leaderless but had large participation by the youth.But why was there so much anger and violence on that day?For the first time, Dalits faced resistance and bullets on that day. Dalits do not oppose when others hit the street. But this time when the Dalits hit the street, the upper castes opened fire and put up a resistance. The most brazen attacks were carried out in Gwalior in Madhya Pradesh. It has been now established that Dalits there were killed by bullets fired by upper caste men, not the police.Dalits are still being tortured and harassed there. I do not support violence of any kind. But Dalits are being implicated in false cases everywhere.Why do you think there is such contempt, or would you call it hatred,against Dalits? They (upper castes) are unable to accept that people who would not dare look up to them and always sit at their feet earlier are now demanding equality and opportunity. Their dominance is threatened and Dalits and OBCs are seen as eating away part of the pie that they have enjoyed for so long. This bandh will be a bhasmasur (self destruction button) as it will consolidate Dalits and pave way for the unity of backward classes.

https://www.nationalheraldindia.com/india/bjp-mp-udit-raj-calls-bharat-bandh-against-reservation-anti-national-dalits-obcs

Appeal to the Reeaders

You will be happy to know that the Voice of Buddha will now be published both in Hindi and English so that readers who cannot read in Hindi can make use of the English edition. I appeal to the readers to send their contribution through bank draft in favour of **"Justice Publication"** at T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001. The contribution amount can also be transferred in **'Justice Publication' Punjab National Bank account no. 0636000102165381 branch Janpath, New Delhi** under intimation to use by email or telephone or by letter. Sometimes, it might happen that you may not receive the Voice of Buddha. In that case kindly write to us and also check up with the post office. As we are facing financial crisis to run it, you all are requested to send the contribution regularly.

Contribution :
Five Year : Rs 600/-
One Year : Rs. 150/-

VOICE OF BUDDHA

Publisher : Dr. UDIT RAJ (RAM RAJ), Chairman - Justice Publications, T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001, Tel: 23354841-42

● Year : 21 ● Issue 10 ● Fortnightly ● Bi-lingual ● Total Pages 8 ● 1 to 15 April , 2018

Article Published in The Statesman on 5th April, 2018

Dalits dig their own burial

It has become mundane to live by double standards- there's little convergence between what people say and what they actually do. 14th April is celebrated as the birth anniversary of Dr. Ambedkar, this day witnesses enumerable celebrations, discussion and discourses all over the country and now abroad too. For instance, a group of Ambedkarites is celebrating the birth anniversary of in United Nations Head Quarters in New York. Mostly these programs are run by Dalits and going by their speeches and behavior during celebrations it will look as if a social revolution is going to be brought about. The philosophy of Buddhism and annihilation of caste is on their tongues. As soon as the events are concluded again they are back into the caste fold. Be it Gandhi Ji or any other statesman, fate is the same-that we internalise least what they stood for. At the time of independence Gandhi Ji said that no longer state will be required as each village will be autonomous and self sufficient and wealth will be controlled by trusteeship. He even questioned the existence of congress once Independence was achieved.

There is less requirement by so called upper caste to follow the axioms of statesmen, the reason being that they are better off. Even if they don't change still their life is manageable. If we had a mindset to adhere social, political and philosophical contribution of statesmen could we not have become like USA, China or Japan. What Kabir Das preached in the medieval ages was

revolutionary. We read, wrote, speak his thoughts but never allowed them to become a part of our behavior. Can Dalits, backwards and women afford to behave in this manner if they want to change their lives.Their pitiable condition needs change more. Dalits practice more casteism among themselves than Brahmin, Rajput or Vaishya. Since ages they have been dining, sitting, interacting but not allow inter caste marriages. Barring educated Dalits like Chamaars, Khatik, Valmiki, Mushhar, they have reservations in dining together but also practice untouchability.

For last two-three decades education and consciousness among Dalits and backwards have risen but that has led to more fragmentation. Everyone is rushing to float his own organisation and more caste-oriented organisations are also coming up which engage in blaming each other to fulfill their petty benefits.In Andhra Pradesh and Telangana there is a fierce quarrel among Maala and Madiga, in Haryana one will see the dispute between Chamaar and Valmiki and situation in Uttar Pradesh is not any better as most of the castes gang up against the Chamaars and vice-versa. They should know that by perpectuting old caste frameworks their social, political, religious situation will remain the same. By organizing their caste, small and personal successes are achieved but at what cost ? This becomes ground for other dalit castes to become antagonistic to each other. I have been experiencing it for last two decades. Being the Founder National Chairman of All India Confederation of SC/ST Organization, I led powerful national level struggle as a result of which reservation was saved and also contributed in expansion of Buddhism. Any discriminated and harassed person who met me, I stood with them to redress their grievances. I was in Indian Revenue Service and without fear of losing it, I launched the struggle under the banner of the Confederation in 1997, resulting in three constitutional amendment to restore benefits of reservation.On November 4, 2001 I took Buddhism to become a true Ambedkarite. After that we popularised the cause of reservation in private sector. In 2003, I resigned from the post of Additional Commissioner Income Tax and floated Indian Justice Party. During elections , Dalits are not seen around dalit leaders and make up mind to vote the established parties be it Congress, BJP and others . After the formation of the government and when atrocities are unleashed and rights infringed, then Dalits and OBC remember their leaders to fight for them . Do they realise that at the time voting, did they listen to their leaders. Rather start targeting what me or Ram Vilas Paswan and Athwale are doing for the society. Since 2003, mainly Dalits only have been accusing me of being stooge of either Congress or BJP. Without having any ground and reason they have been doing this and it was done mainly because of sub-caste prejudices. They never realise that they are digging their own grave. On one hand they were for their sub-caste unity and discredit to others and on another hand the life line, that is, reservation was being diluted sometimes by courts and at other hand government policies. Recent judgement of Supreme Court in the matter of filling up of vacancies in education and prevention of atrocities act

1989 have caused great harm, how can we counter if we stand divided? Outsourcing of jobs, contractual system in the government has dwindled the reservation. I was weakened by sub caste discrimination. It was not my choice to be born in particular caste. To delink from my caste identity, I became a Buddhist, yet caste followed everywhere.

If Dalits and Tribal are still backward then the reason is that they are not following the Ambedkar philosophy. Reservation has been diluted in the government jobs and education which was the main source of economic empowerment, dignity and participation in governance. This year Government of India is marking the Birth Anniversary of Dr. Ambedkar as Justice Day. Nothing is going to help Dalits till they purge their caste prejudices and get united, not only in speech but in behaviour too and follow the axiom of educate, unite and struggle.

***

Publisher, Printer and Editor - Dr. UDIT RAJ (FORMERLY KNOWN AS RAM RAJ), on behalf of Justice Publications, T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001, Tel: 23354841-42, Telefax:23354843, Printed at Sanjay Printing Works, WZ-4A, Basai Road, New Delhi.
Website : www.aiparisangh.com, www.uditraj.com E-mail: parisangh1997@gmail.com Computer typesetting by Ganesh Yerekar